**ओ३म्**

**“परमात्मा ने वेद द्वारा अपनी अनादि सनातन जीव (मनुष्य) रूप प्रजा**

**के लिए सब विद्याओं का बोध कराया हैः ईशावास्योपनिषद्”**

**प्रस्तुतकर्ता-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

ईशावास्योपनिषद अर्थात् यजुर्वेद के 40 वें अध्याय के 8वें मन्त्र का ऋषि दयानन्द कृत भाषार्थ व भावार्थ सहित मंत्र का भाष्यसार आदि प्रस्तुत हैः

**ऋषि दीर्घतमाः। देवता आत्मा=परमात्मा। छन्द स्वराड्जगती। स्वर निषादः।।**

**परमेश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया है।।**

**स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरम् शुद्धमपापविद्धम्।**

**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।8।।**

 **भाषार्थ-**हे मनुष्यो ! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित है, (अव्रणम्) छिद्र रहित एवं जिसके दो टुकड़े नहीं हो सकते, (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के बन्धन से रहित है, (शुद्धम्) अविद्या आदि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र है, (अपापविद्धम्) जो कभी भी पाप से युक्त, पाप करने वाला और पाप से प्रेम करने वाला नहीं है, वह (परि$अगात्) सर्वत्र व्यापक है, जो (कविः) सर्वज्ञ, (मनीषी) सब जीवों की मनोवृत्तियों को जानने वाला, (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला, (स्वयम्भूः) अनादिस्वरूप वाला, जिसकी संयोग से उत्पत्ति और वियोग से विनाश नहीं होता, जिसके माता-पिता कोई नहीं और जिसका गर्भवास, जन्म, वृद्धि और क्षय नहीं होते हैं, वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन, अनादि स्वरूपवाली, अपने स्वरूप की दृष्टि से उत्पत्ति और विनाश से रहित (समाभ्यः) प्रजा के लिए (याथातथ्यतः) यथार्थता से (अर्थात्) वेद के द्वारा सब पदार्थों का (व्यदधात्) अच्छी तरह से उपदेश करता है। (सः) वह परमात्मा ही तुम्हारे लिए उपासना करने योग्य है।

**भावार्थ**-हे मनुष्यो! यदि अनन्त शक्तिशाली, अजन्मा, अखण्ड, सदा से मुक्त, न्यायकारी, पापरहित, सर्वज्ञ, सब का द्रष्टा, नियन्ता और अनादिस्वरूप वाला ब्रह्म सृष्टि के आदि में स्वयं प्रोक्त वेदों के द्वारा शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को बतलाने वाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई भी विद्वान् न बन सके, और न धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप फल को (ही कोई मनुष्य) प्राप्त कर सके। इसलिए इस ब्रह्म की उपासना सदा करो।

**भाष्यसार**-परमेश्वर कैसा है-जो ब्रह्म-शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान्, स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित, छिद्र रहित एवं अखण्ड, नाड़ी आदि के बन्धन से रहित, अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र, या जो कभी पापयुक्त, पापकारी और पापप्रिय नहीं है, वह सर्वत्र व्यापक है। वह सर्वज्ञ, सब जीवों की मनोवृत्तियों का ज्ञाता, दुष्ट पापी जनों का तिरस्कार करने वाला, स्वयम्भू अर्थात् अनादि है, उसकी संयोग से उत्पत्ति और वियोग से विनाश नहीं होता। उसके माता-पिता कोई नहीं। वह कभी गर्भवास नहीं करता। वह जन्म, वृद्धि और क्षय से रहित है।

अनन्त शक्ति वाला, अज, निरन्तर, सदा मुक्त, न्यायकारी, निर्मल, सर्वज्ञ, सब का साक्षी, नियन्ता, अनादि स्वरूप ब्रह्म-सृष्टि के आदि में सनातन, अनादि स्वरूप, अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश से रहित जीवों के लिए यथार्थ रूप में वेद के द्वारा सब पदार्थों का उपदेश करता है। यदि ब्रह्म स्वयं प्रोक्त वेदों के द्वारा शब्द-अर्थ-सम्बन्ध की विज्ञापक विद्या का उपदेश न करे तो कोई भी मनुष्य विद्वान् न हो सके और न कोई धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूप फल को प्राप्त कर सके। अतः सब मनुष्य मन्त्रोक्त ब्रह्म की ही उपासना करें।

**अन्यत्र व्याख्यात-(**क) ‘स पर्यगाच्छु.’।। ईश्वर की स्तुति-वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयं सिद्ध परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है। यह सगुण स्तुति अर्थात् जिस-जिस गुण सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण, (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता, इत्यादि जिस-जिस राग, द्वेषादि गुण से पृथक मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है, वह निर्गुण स्तुति है। इससे (ईश्वर के अनुरूप) अपने गुण, कर्म, स्वभाव भी करना, जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे, और (जो) अपने चरित्र (को) नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है (सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास)।।

(ख)-स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः (यजुर्वेद 40/8) जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है वह सनातन जीव रूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है। (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास)

(ग)-‘‘शाश्वतीभ्यः समाभ्यः” अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप (मनुष्यरूप) प्रजा के लिए वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है। (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास)

(घ)-‘‘अज एकपात्” ‘‘अकायम्” इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म, मरण और शरीर धारण रहित वेदों में कहा है। (सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)

(ड.)-‘‘स पर्यगाच्छु.’’ जो परमेश्वर-(कविः) सबका जानने वाला, (मनीषी) सबके मन का साक्षी, (परिभूः) सब के ऊपर विराजमान और (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप है, जो अपनी अनादि स्वरूप प्रजा को अन्तर्यामी रूप से और वेद के द्वारा सब व्यवहारों का उपदेश किया करता है, (स पर्यगात्) सो सब में व्यापक (शुक्रं) अत्यन्त पराक्रम वाला, (अकायं) सब प्रकार के शरीर से रहित (अव्रणं) कटना और सब रोगों से रहित (अस्नाविरं) नाड़ी आदि के बन्धन से पृथक्, (शुद्धं) सब दोषों से अलग और (अपापविद्धं) सब पापों से न्यारा इत्यादि लक्षणयुक्त परमात्मा है, वही सबको उपासना के योग्य है। ऐसा ही सबको मानना चाहिये, क्योंकि इस मन्त्र से भी शरीर धारण करके जन्म-मरण होना इत्यादि बातों का निषेध परमेश्वर विषय में पाया ही गया है। इससे इसकी (ईश्वर की) पत्थर आदि की मूर्ति बनाकर पूजना किसी प्रमाण वा युक्ति से सिद्ध नहीं हो सकता। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय)

 (च)-‘‘स, पर्यगात्” वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है, ‘‘शुक्रम्” सब जगत् का (निर्माण) करने वाला वही है ‘‘अकायम्” और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता, क्योंकि वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार है, इससे देह धारण कभी नहीं करता, उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है, इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। ‘‘अव्रणम्” वह अखण्डैकरस, अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है इससे अंशांशीभाव भी उस में नहीं है, क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता, ‘‘अस्नाविरम्” नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध भी उसका नहीं हो सकता, अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर का कोई आवरण नहीं हो सकता, ‘‘शुद्धम्” वह परमात्मा सदैव निर्मल अविद्यादि जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृष्णादि दोषोपाधियों से रहित है, शुद्ध की उपासना करने वाला शुद्ध होता है और मलिन का उपासक मलिन ही होता है, “अपापविद्धम्” परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है, ‘‘कविः” त्रैकालज्ञ (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता, ‘‘मनीषी” सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सब के मन का दमन करने वाला है, ‘‘परिभूः” सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सब के ऊपर विराजमान है, ‘‘स्वयम्भूः” जिसका आदिकारण माता, पिता, उत्पादक कोई नहीं किन्तु वही सबका आदिकारण है।

 ‘‘याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः” उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है। उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक, वेदविद्यारूप सूर्य प्रकाशित किया है और सबका आदिकारण परमात्मा है, ऐसा अवश्य मानना चाहिये। ऐसे विद्या-पुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को ही निश्चित मानना चाहिए।

 विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है, क्योंकि हम लोगों के लिए उसने सब पदार्थों का दान दिया है तो विद्यादान क्यों न करेगा?

 सर्वोत्कृष्ट विद्यापदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है तो वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसा ही वेद पुस्तक भी है। अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत वेदतुल्य वा अधिक नहीं है।

 ऋषि दयानन्द कृत उपर्युक्त वेदमंत्र का भाषार्थ, भावार्थ और भाष्यसार सहित ऋषि दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा आर्याभिविनय में व्याख्यात इन मंत्रों के अर्थों का व्याख्यान यहां पर समाप्त होता है। इस मंत्र की व्याख्या को पढ़कर इसका यथार्थ बोध पाठक वा जिज्ञासु को प्राप्त होता है। महर्षि दयानन्द ने इस मंत्र के जो अर्थ दिये हैं वह उनसे पूर्व के किसी वेद भाष्यकार द्वारा प्रस्तुत नहीं किये जा सके। इसका कारण ऋषि की उच्च योग्यता, योगाभ्यास, सभी विद्या विषयों का गहन अध्ययन, कठोर तप व साधना सहित ईश्वर की उन पर विशेष कृपा का होना है। इस मन्त्र का भाष्य पढ़कर ईश्वर विषयक मान्यताओं के अनेक वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान भी होता है और मूर्तिपूजा, जड़पूजा तथा अवतारवाद आदि का खण्डन भी होता है। बुद्धि, तर्क तथा सृष्टिक्रम के अनुकूल होने से यही ईश्वरीय ज्ञान भी सिद्ध होता है और अन्य मतों के ग्रन्थों में ईश्वर के इस स्वरूप व उसके गुणों के विपरीत जो कथन किये गये हैं वह निर्मूल सिद्ध होते हैं। हमें लगता है कि यदि इस मन्त्र व इसके व्याख्यान में कही गई सत्य व यथार्थ बातों को संसार अपना ले तो विश्व में धार्मिक एकता स्थापित करने में सहायता मिल सकती है। सभी मतों के आचार्यों के स्वार्थों के अनुकूल ईश्वर के स्वरूप विषयक वैदिक मान्यतायें न होने के कारण वह इनके सत्य होने पर भी इसकी उपेक्षा ही करते आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में जिज्ञासुओं को ईशावास्योपनिषद् का विशेष अध्ययन कर इसकी शिक्षाओं का विश्व स्तर पर प्रचार करना चाहिये। ईशावास्योपनिषद् के आठवें मन्त्र की ऋषि दयानन्द जी की व्याख्या प्रस्तुत करने के बाद अब हम आगामी लेख में इसके बाद के मंत्रों के ऋषि दयानन्द जी के अर्थां को भी प्रस्तुत करेंगे। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**